भारतीय संविधान एवं धर्म निरपेक्षता

डॉ० श्रीमती मुन्नी पाठक*

''धर्म निरपेक्ष राज्य ने सामाजिक कल्याण, स्वास्थ्य, संचार, विदेश नीति, मुद्रा आदि पर ध्यान देना चाहिये न कि मेरे या दूसरे के धर्म पर।''[1] **महात्मा गाँधी**

''भारत एक बहुधर्मी देश है, और हमारे देश में सांस्कृतिक विविधता है। इस रूप में धर्मनिरपेक्षता का सिद्धान्त पूरे समाज के कल्याण हेतु बहु समाज के लिये लागू होना चाहियें।''[2] **जवाहर लाल नेहरु**

मूल भारतीय संविधान में धर्म निरपेक्ष शब्द का उल्लेख कहीं पर भी नहीं किया गया है। और न भारत को स्पष्टतया धर्म निरपेक्ष राज्य ही घोषित किया गया है। फिर भी संविधान में कुछ ऐसी व्यवस्थायें की गयी है जिसके कारण इसे धर्म निरपेक्ष राज्य का रूप प्राप्त हो जाता है। सन् 1976 में 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा भारतीय संविधान की प्रस्तावना में समाजवादी, धर्म निरपेक्ष शब्द को जोड़कर भारत को एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित करके धर्म निपेक्षता की ओर बल दिया गया।[3] धर्म निरपेक्षता के आदर्श की प्राप्ति करने के लिये संविधान के अन्तर्गत प्रावधान रखा गया है संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिको को धर्म, विश्वास और पूजा की स्वतंत्रता दी गयी है। संविधान के भाग तीन में मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत संविधान की धारा–17 के अन्तर्गत, अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है। धारा–15 के अनुसार, किसी भी व्यक्ति को धर्म के अनुसार सार्वजनिक पदो पर नियुक्तियाँ करने में धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का भेद भाव नही किया जायेगा। अनुच्छेद–25 के अनुसार, अंतःकरण की स्वतंत्रता, ताकि किसी भी धर्म को उस पर आचरण करने की एवं धार्मिक स्वतंत्रता की गारण्टी दी गयी है। धारा–26 में प्रावधान है कि धार्मिक मामलों का प्रबन्ध बिना किसी प्रकार के हस्तक्षेप के साथ करने एवं प्रत्येक समुदाय को धार्मिक तथा परोपकारी उद्देश्य के लिये संस्थाएँ स्थापित करने और चलाने का अधिकार है। धारा–27 में किसी विशेष धर्म की उन्नति एवं प्रचार प्रसार के लिये करों की वसूली पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। और अनुच्छेद–28 में सरकारी धन से चलने वाली शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा न देने की गारण्टी दी गयी है। साथ ही धार्मिक उपासना में उपस्थित न होने की छूट दी गयी है। शिक्षा और सांस्कृतिक सम्बन्धी अधिकारों के अन्तर्गत अनुच्छेद–28 में अल्पसंख्यको के हितो को संरक्षण दिया गया है। अनुच्छेद–30 में अल्प संख्यको को अपने पसन्द की शिक्षण संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार है।

इस प्रकार भारतीय संविधान के लिखित प्राविधानों के आधार पर सरकार इस बात के लिये वचनबद्ध है कि वे अल्प संख्यको के प्रति चाहे वे धार्मिक, सांस्कृतिक एवं भाषायी आधार पर कोई भी क्यों न हो, किसी भी प्रकार का भेद भाव नही होने देगी। भारतीय संविधान के धार्मिक स्वतंत्रता सम्बन्धी ये उपबन्ध धर्म निरपेक्ष एवं असम्प्रदायिक राज्य की आधारशिला है। भारतीय संविधान के इसी स्वरूप के आधार पर डॉ0 सुभाष कश्यप लिखते है कि, ''भारत जैसे देश में जहाँ अनेक धर्म जन्मे और आज भी फल फूल रहे है, धर्म निरपेक्षता का सिद्धान्त विशेष महत्त्व रखता है।''[4] धर्म से अभिप्राय है बोध या कर्त्तव्य के प्रति जागरुकता। धर्म का वास्तविक अर्थ जीवन पथ का सही चुनाव और लक्ष्य प्राप्ति हेतु युग सम्मत उपायो के प्रयोग से है। धर्म का साध्य है मनुष्य को दासता, जड़िमा, मोह, कुसंस्कार और परमुखापेक्षता से बचाना, मनुष्य को शुद्र भाव एवं झूठे अंहकार की दुनिया से ऊपर उठाकर सत्य, त्याग और सौहार्द की दुनिया में ले आना। मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण की प्रवृति को नष्ट करके सामूहिक कल्याण की और अग्रसर करना। लेकिन वर्तमान समय में ठीक इसके विपरीत धर्म का अर्थ हो गया है मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्धारो में जाना। धर्म के इस अर्थ ने आज हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई के रुप में मानव को विभाजित कर दिया है। इसी वजह से हमारे धर्म में संकीर्णता, अनुउदारवाद और स्वार्थ की भावनाएँ समय–समय पर दिखलाई पड़ती है। यही से अलगाव की भावना जन्म लेती है। प्राचीन भारत का मूल मंत्र धर्म रहा है, धर्म ही भारतीयों का प्राण रहा है। पुरुषार्थत्रय धर्म, अर्थ और काम के अन्तर्गत धर्म को ही प्रथम स्थान दिया गया है। भारतीय संस्कृति में धर्म की प्रधानता के बावजूद भारतीय संविधान निर्माता धर्म विशेष को राजनीति के साथ मिश्रित करने के दुष्परिणामों से परिचित थे। वे जानते थे कि इसी धार्मिक विवेक ने देश की रक्षा को आघात पहुँचाया है। नवीन प्रजातंत्र की सुदृढ़ नींव समस्त प्रजाजनों के विश्वास के आधार पर ही रखी जा सकती है। अतः उन्होंने परम्पराओं के विरुद्ध जाकर भारत के लिये धर्म निरपेक्ष राज्य के आदर्श को अपनाया।

* एसेसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, एल0एस0एम0 राज0 स्ना0 महाविद्यालय, पिथौरागढ

प्रोफेसर डोनाल्ड स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **"इड़िया इज अ सेक्यूलर स्टेट"** (प्रिन्सटन यूनिवरसीटी प्रेस, 1963) में धर्म निरपेक्ष राज्य का आशय स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, धर्म निरपेक्ष राज्य व्यक्तिगत और सामूहिक आधार पर अपने निवासियों को धर्म की स्वतंत्रता प्रदान करता है। जो धर्म से पृथक और असम्बद्ध हो तथा धर्म के प्रति निष्ठावान न हो। इस तरह एक ऐसे राज्य से इसका अर्थ है– राजनीतिक मामलो में धर्म के प्रभाव से मुक्त होना, राज्य का धार्मिक क्षेत्र में तटस्थ होना और किसी धर्म के साथ पक्षपात न करना है।

यद्यपि संविधान में धर्म निरपेक्षता को आधारभूत अवधारणा माना गया है पर उस पर अमल नही हो पा रहा है । क्योंकि संविधान द्वारा धर्म निरपेक्ष राज्य तो घोषित कर दिया है, लेकिन अभी तक धर्म निरपेक्ष समाज की स्थापना नहीं की जा सकी है। इसके लिये साम्प्रदायिकता और जातिवाद धर्म निरपेक्षता के मार्ग की सबसे बड़ी बाधायें है, क्योंकि धर्म का प्रयोग राजनीति में जहाँ एक और तनाव उत्पन्न करने के लिये किया जाता है, वही दूसरी और शक्ति प्राप्त करने का माध्यम भी धर्म को मान लिया जाता है। यदि आरक्षण की सीटो पर एक नजर डाली जाय तो स्थिति स्पष्ट हो जाती है। लोक सभा में 84 सीटें अनुसूचित जाति के लिये 15 प्रतिशत आरक्षण केन्द्रीय नौकरियों में, 18 प्रतिशत अनुसूचित जाति समूह को तमिलनाडू में आरक्षण मिला हुआ है। अपने निहित स्वार्थो के सिद्धि हेतु धर्म के नाम पर जाति का सहारा लेकर जाति व्यवस्था मे भिन्नता पैदा कर उनमें आपसी मतभेद पैदा कर संविधान में इंगित धर्म निरपेक्षता से सम्बन्धित प्रावधानों को ताक में रख कर जाति के आधार पर राजनैतिक दलों का निर्माण किया जा रहा है। चुनावों में मत व समर्थन प्राप्त करने के लिए धर्म का सहारा लिया जाता है। जनता से की जाने वाली अपीलें उन्हें दिये जाने वाले आश्वासनों, निर्वाचन में प्रत्याशियों के चयन तथा मतदान व्यवहार को प्रभावित करने में धर्म का राजनैतिक स्वरूप देखने को मिल रहा है और ये भारतीय राजनीति के स्वरूप को किसी न किसी रूप में प्रभावित भी कर रहा है, यथा मुस्लिम लीग, शिरोमणि अकाली दल, हिन्दू महासभा रामराज्य परिषद् आदि। राजनैतिक दलों के निर्माण में धार्मिक व सम्प्रदायिक तत्वों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही हैं। राजनैतिक दल जिस निर्वाचन क्षेत्र में जिस जाति के लोगों की संख्या ज्यादा है वे उस जाति के प्रत्याशी को ही चुनाव मैदान मे उतारते हैं। इस आाधर पर प्रत्याशियों का मनोनयन किया जाता है। हिन्दुओं में ब्राहम्ण व राजपूत अपनी जातियों के उम्मीदवारों को चुनाव मैदान में उतारते हैं, इसमें कोई भी राजनैतिक दल पीछे नहीं रहना चाहता है। इसकी वजह से न केवल जाति वैभिन्नता बढ़ रही है, बल्कि सम्प्रदायिकता भी बढ़ती जा रही है।[5] ऐसे अवसर भारतीय राजनीति में अनेक अवसरों में देखने को मिले हैं यथा– 1971 के चुनावों में पहली बार कांग्रेस को 07 राज्यों में विरोधी दलों के मिली–जुली सरकार का सामना करना पड़ा कांग्रेस की राष्ट्रीय स्तर पर एकछत्र छवि पहली बार इसी चुनाव के दौरान भंग हुई, अपनी विश्रंखलित होती छवि को सुधारने के लिए कांग्रेस द्वारा उच्च जातियों, हरिजनों एवं मुसलमानों के मध्य जातिगत समन्वय एवं सामन्जस्य स्थापित करने का प्रयास किया गया। चुनाव में अल्प संख्यको व पिछड़े वर्गो के अपार समर्थन से विजयी हुयी। छठे दशक में ही कृषि उद्यमी जनसंख्या का एक बड़ा भाग प्रभावशाली मध्यम वर्ग के रूप में विकसित हुआ। जिससे विशेष रूप से उत्तर प्रदेश व बिहार में, राजनैतिक चेतना का तीव्रता से विकास हुआ। विशेष रूप से यादव, कुर्मी तथा कोयारी के अभ्युदय के साथ ही भारतीय राजनीति में जाति एक प्रमुख मसला बन गई। इस तरह बिहार की राजनीति अगड़ी व पिछड़ी जातियों के बीच, तमिलनाडू व महाराष्ट्र में ब्राहमण व गैर ब्राहमण, आन्ध्र प्रदेश में कम्मा बनाम रेड्डी, राजस्थान में जाट बनाम राजपूत, गुजरात में बन्या बनाम पाट्टीदार, केरल में एजवा बनाम नायर, कर्नाटक में लिंगायत बनाम वोकालिंग बिहार में यादव बनाम ठाकुर, हरियाणा में जाट बनाम ब्राहमण, उत्तर प्रदेश में सवर्ण बनाम पिछडा वर्ग की राजनीति इसी के इर्द गिर्द रही।[6] ये समस्त जातियाँ क्रमशः राजनैतिकीकरण की ओर उन्मुख होने लगी और वर्तमान में राजनीति में उच्च वर्गो की भूमिका के लिए एक सबल चुनौती सिद्ध हुयी।

चुनाव के दौरान तो राजनैतिक दलों द्वारा अपने विरोधियों को अवरोधित करने के लिए धर्म की आड़ लेकर जानबूझ कर जातिगत संघर्ष का माहौल बना दिया जाता है। जिसका अन्तिम परिणाम हिंसा की राजनीति को जन्म देता है। ये ही नहीं, जब सरकार अपनी नीतियों एवं उद्देश्यों को कारगर रूप में परिणित करने में असफल हो जाती है तो तुरन्त हरिजनों पर अत्याचार का मामला उछाल दिया जाता है। ये ही नहीं चुनाव का आंकलन भी धर्म व जाति के आधार पर किया जाता है और अनेक उदाहरण ऐसे भी हैं जब जाति व धर्म के आधार पर चुनाव जीते भी गये हैं। 1971 में श्रीमती गाँधी ने सत्ता प्राप्त की। वह मुस्लिम, हरिजन और ब्राह्मणों के मध्य एक प्रकार के गठबंधन का परिणाम था।[7] 1977 जनता दल की विजय का कारण आपात काल के दौरान कांग्रेस द्वारा अपनायी गयी आततायी पूर्ण नीतियाँ तो थी ही साथ ही जो महत्त्वपूर्ण तथ्य जनता दल के विजय का रहा, वह था हरिजन व मुसलमानों का पूर्ण समर्थन प्राप्त होना। 1980 में कांग्रेस की विजय का प्रमुख कारण ही उसे हरिजन, मुस्लिम व ब्राह्मणों का समर्थन मिलना था। 1988 के विधान सभा चुनावों में (इलाहाबाद विधान सभा सीट हेतु) यद्यपि कांग्रेस

विजय नहीं रही फिर भी अपनी प्रतिष्ठा को बनाये रखने के लिए उस समय दूरदर्शन में दिखायी जा रही रामायण के ''राम'' श्री अरूण गोबिल को सुनील शास्त्री के प्रचार में लगाया गया यह कांग्रेस द्वारा धार्मिक भावनों को उभारने का ही एक प्रयास था। भा0ज0पा0 जिसे 1984 में लोक सभा के कुल 02 स्थान मिले वही 1989 में राम जन्म भूमि आन्दोलन को चुनावी मुद्दा बनाकर 88 लोक सभा स्थान प्राप्त करने में सफल रही।[8] स्वयं 18 जून, 1991 को श्री लाल कृष्ण आडवाणी ने यह कुबूल कर लिया था कि यदि मैंने राम के प्रभाव का उपयोग न किया होता तो मैं नई दिल्ली से चुनाव हार गया होता। चुनाव के दौरान तो उस निर्वाचन क्षेत्र के मंदिर, मस्जिद गुरुद्धारा में हर दल के प्रत्याशियों द्धारा माथा टेकना एक प्रचलन सा होता जा रहा है। जनता की नब्ज को पकड़ 2014 के संसदीय चुनाव में चुनाव प्रचार से पूर्व प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने बनारस के गंगा घाट में गंगा की अर्चना कर चुनाव प्रचार प्रारम्भ करना एक तरह से हिन्दुओं को अपनी दल की ओर आकर्षित करने का एक प्रयास था। राजनीति में इस तरह की घटनाओं को देखते हुये के0वी0 राय ने कहा, ''भारतीय धर्म निरपेक्षता अल्प संख्यकों के राजनीति संरक्षण के लिए ढाल का काम करती है''।[9] रजनी कोठारी ने कहा, ''भारत मे राजनैतिक दल इस डर से साम्प्रदायिकता से बचते हैं कि वे दूसरे सम्प्रदाय के वोट खो देंगे''।[10] अब तो साम्प्रदायिकता व जातिवाद भारतीय वायुमण्डल में दुर्गन्ध फैलाने के अतिरिक्त और कुछ नही करती है। यह जातिभेद की उत्पत्ति भारत की राजनीतिक संस्थाओं से हुई है। इस तरह से कहा जा सकता है कि धर्म का उपयोग राजनीति में जीत का प्रभावकारी शस्त्र बन गया हैं। चुनाव के उपरान्त ही सरकारी पदों के वितरण में भी जाति का विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रायः स्थानीय से केन्द्रीय स्तर तक मंत्री मण्डल के गठन में इस तथ्य का ध्यान रखा जाता है कि प्रत्येक स्तर पर प्रत्येक प्रमुख जाति का समन्यक प्रतिनिधि मिल जाये। जातिवाद की इसी राजनीति का प्रस्फुटन विभिन्न जातियों के लिये विभिन्न स्तरों पर आरक्षण की राजनीति में हुआ। विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा तकनीकी एवं चिकित्सयी संस्थानों में जातिगत आरक्षण का प्रावधान किया गया है। मण्डल आयोग व उससे उत्पन्न साम्प्रदायिक दंगे हिंसा व आगजनी व अपनी शक्ति का प्रदर्शन इसका ज्वलंत उदाहरण है। ये ही नहीं सामाजिक न्याय की स्थापना की आड़ में स्वयं सत्ता प्राप्त दलों द्वारा राजनीतिक स्वार्थो के लिए जातिगत आरक्षण का प्रयोग किया जाता रहा है।

भारतीय संविधान की कुछ व्यवस्थायें धर्म निरपेक्ष स्वरूप को संदिग्ध बनाती है। जो इस प्रकार है–

1. संविधान में धारा–30 का समावेश, जिसके अनुसार मजहवी तथा अन्य अल्पसंख्यको को शिक्षा संस्थाएँ खोलने उनमें शिक्षा के स्वरूप आदि के मसले में ऐसे अधिकार दिये गये हैं जो देश के बहुमत राष्ट्रीय समाज को नहीं दिये गये हैं।
2. संविधान की धारा–44 पर अमल न करना जिसमें प्रावधान रखा गया है कि सभी नागरिकों के लिए समान कानून यथा हिन्दु कोड विल, शाहबानो केस।
3. कश्मीर मुस्लिम बहुल होने के कारण संविधान में धारा–370 जोड़कर विशेष राज्य का दर्जा देना, जिसके अनुसार उन्हें देश में हर प्रकार के अधिकार प्राप्त हैं और शेष भारत के लोगों को वहाँ पर बसने या वहाँ का मतदाता बनने का भी अधिकार नहीं है।
4. अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, 1947 के पहले मुस्लिम सम्प्रदाय और अलगाववाद का सबसे बड़ा गढ था, इसके 85 प्रतिशत विद्यार्थी और अध्यापक भारत विभाजन के बाद पाकिस्तान चले गये। यह विश्वविद्यालय पूरी तरह भारत के करदाताओं के रूपयों पर चलता है। इसको बन्द न किया गया और न उसके चरित्र को बदला गया, फलस्वरूप यह फिर से देश में मुस्लिम साम्प्रदायिकता चलाने का गढ़ बन गया।
5. उर्दू, हिन्दी की एक शैली है इस की सारी क्रियायें वही हैं जो हिन्दी की है। 1947 से पूर्व मुसलमानों में साम्प्रदायिकता और अलगाववाद पैदा करने का यह एक प्रमुख माध्यम था। इसका भारतीयकरण किये बिना इसकी लिपि बदले बिना फिर इसे कुछ राज्यों में दूसरी राजभाषा का दर्जा देने से भी साम्प्रदायिकता को बल मिला है।
6. अल्पसंख्यक आयोग बनने से भी साम्प्रदायिकता को भी बढ़ावा मिला है।
7. वोट की राजनीति ने तो इस सम्बन्ध में आग में घी डालने का काम किया है।

इन विभिन्न तथ्यों को ध्यान में रखते हुये कहा जा सकता है कि राजनीति में धर्म की आड़ लेकर जातिवाद को इस प्रकार महत्त्व दिया जाना, किसी भी प्रजातांत्रिक देश के लिए घातक है। साम्प्रदायिक झगडे भले ही छुट–पुट क्यों न हों, इससे देश की बदनामी होती है और उसका लोकतंत्रीय धर्मनिरपेक्ष स्वरूप कलंकित होता है।

आज देश को जिस नये ढाँचे की जरूरत है उसका आधार यह हो सकता है –

1. साम्प्रदायिक एवं जातिगत दलों पर जब तक प्रतिबन्ध नहीं लगता, सभी धर्म निरपेक्ष दलों को उनसे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सभी तरह के सम्बन्ध विच्छेद कर लेने चाहिए। कौन से दल साम्प्रदायिक और जातिवादी है इसका निर्णय करने के लिये एक आयोग बैठाया जाय।
2. संविधान के अनुच्छेद–30 का संशोधन किया जाये। जिन शिक्षा संस्थानो को सरकारी अनुदान मिलता है उनके धार्मिक एवं जातिवादी नाम बदले जाये। धर्म एवं जाति के नाम पर जो लोक कल्याणकारी संस्थायें चल रही है उन्हें सरकारी अनुदान बिल्कुल न दिया जाय।
3. धार्मिक मामलों और उपासना केन्द्रों की व्यवस्था में सरकार का कोई हाथ नहीं होना चाहिए। धार्मिक संस्थानों से धार्मिक प्रचार एवं धर्म गुरुओं पर किसी भी राजनीतिक दल के पक्ष या विपक्ष में बोलने पर सख्त पाबंदी लगा दी जानी चाहिए।
4. धार्मिक उत्सवों को सरकारी संरक्षण नहीं मिले और न किसी ऐसे उत्सव को सरकारी रेडियों या टेलीविजन पर दिखाया जाय।
5. धर्म को व्यक्ति का निजी मामला बनाने के लिये लगातार अभियान चलाया जाय तथा बुद्धिवाद के व्यापक प्रचार द्वारा इस तरह कोशिश की जाये कि निजी जीवन में भी धर्म का स्थान प्रमुख न हो।
6. राजनीतिक दलनीतियाँ निर्धारित करते समय निजी स्वार्थों को त्याग जनकल्याण को प्रमुखता दें तो अपने आप राम राज्य की स्थापना हो जायेगी।
7. उचित शिक्षा द्वारा जातिवाद के विरुद्ध जन मानस की मनोवृत्तियो में परिवर्तन लाया जाय।
8. मतदाता सूची में नाम के साथ जातिवाचक शब्दों को हटवा दिया जाय।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिकता स्वयं में एक अभिशाप है किन्तु जब वह सत्ता का राजनीति के शस्त्र के रूप में प्रयुक्त की जाती है तो वह या तो विघटित हो जाती है या एक फासिस्ट राज्य को जन्म देती है। इसीलिये राजनेताओं को वोट बैंक का मोह छोडना होगा। धार्मिक नेताओं को अपने अनुयायियों की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति पर ही ध्यान केन्द्रित करना होगा। सामप्रदायिक हिंसा और लूटमार को कठोरता से कुचलना होगा। उपद्रवों के दौरान सुरक्षा बल बिना भेद–भाव के अपने कर्त्तव्य का पालन करें, इसकी व्यवस्था करनी होगी। काम के आधिकार को मूलभूत अधिकारों में शामिल कर हर सक्षम व्यक्ति के लिये रोजगार का प्राविधान करना होगा। राष्ट्रीय एकात्मकता परिषद् को आग लगने पर पानी जुटाने वाली मशीन के रूप में प्रयुक्त करने के बजाय साम्प्रदायिकता, क्षेत्रवाद तथा जातिवाद के राष्ट्रीय दंगों को सही निदान तथा उसके अचुक उपचार के प्रभावी मंच के रूप में प्रयुक्त करना होगा संकुचित निष्ठाओं व संकुचित स्वार्थों को दिल व दिमाग पर हावी होने से रोकने के लिए भारत पहले का संदेश जन–जन तक पहुँचाना होगा। भारत को एक आधुनिक तथा प्रगतिशील राष्ट्र बनाने का संकल्प रूढिवाद तथा साम्प्रदायिकता के विरूद्ध सतत् संघर्ष की माँग करता है।

भारत में धर्म के नाम पर फैली इस अराजकता से देश को बचाने के लिए केन्द्रीय विधि मंत्रालय द्वारा व्यापक मसौदे तैयार करने होगें। क्योंकि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने विभिन्न अधिवेशनों में इसकी आवश्यकता पर बल दिया है। ये मसौदे है– धर्म निरपेक्षता में आस्था न रखने वाले राजनैतिक दलों को राजनैतिक मुख्य धारा से बाहर करना ऐसे राजनैतिक दलों के पंजियन को रदद् करना आदि।

भारतीय संविधान के उल्लेखित प्रावधानों के आधार पर यदि राजनैतिक दल पूर्ण निष्ठा के साथ अपने निहित स्वार्थों को त्याग कर जनहित को ध्यान में रखते हुये कार्य करें तथा हम सभी भारतीय हिन्दू, मुस्लिम, स्वर्ण, दलित की सोच से ऊपर उठकर भारतीय बन जायेंगे तो भारतीय संविधान एवं धर्म निरपेक्षता पर किसी प्रकार की आँच नही आ सकती है। संविधान निर्माताओं द्वारा जिस तरह से संविधान का स्वरूप निर्धारित किया हैं उस आधार पर कहा जा सकता है कि भारत एक धर्म निरपेक्ष राज्य है।

संदर्भ

1. जरनल ऑफ कॉनस्टिट्यशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज वाल्यूम'47 जुलाई–दिसम्बर, 2013 पृष्ठ सं0 325
2. नेहरू जवाहर लाल (1954) लेटर टू पी0सी0सी0 प्रेसिडेन्टस, न्यू दिल्ली। पृष्ठ सं0 20
3. बसु दुर्गा दास, भारत का संविधान एक परिचय, प्रेंटिस हाल, नई दिल्ली। पृष्ठ सं0 26
4. कश्यप डॉ0 सुभाष, सांविधानिक विकास और स्वाधीनता संघर्ष (रिसर्चज़ 1972), पृष्ठ सं0 340
5. पाठक मुन्नी, संसदीय निर्वाचन में चुनाव राजनीति एवं मत व्यवहार कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल, 1992
6. प्रतियोगिता दर्पण/जून 1995 पृष्ठ सं० 17, 12
7. जैन पुखराज एवं डॉ0 फड़िया बी0 एल0, भारतीय शासन एवं राजनीति साहित्य भवन पब्लिकेशन 2009 पृष्ठ सं0 385
8. दिनमान, साम्प्रदायिकता का जहर, मार्च 31, 1988, एव जून 30,1988
9. रॉय के0 वी0/ पथी ए0पी0, 1984 न्यू लिट्रेचर, नई दिल्ली, पृष्ठ सं0 VII
10. कोठारी रजनी, भारत में राजनीति (अनुवाद), पृष्ठ सं0 227

सहायक पुस्तकें एवं पत्र पत्रिका

1. कोठारी रजनी – भारत में राजनीति ,(अनुवाद)
2. कोठारी रजनी – कास्ट इन इण्डिन पॉलिटिक्स
3. काश्यप सुभाष – दल–बदल और राज्यों की राजनीति
4. मॉरिस जोन्स – भारतीय शासन पद्धति (अनुवाद)
5. जोहरी जे0सी0 – रिफलैक्सन ऑन इण्डियन पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, 1974.
6. लोकतंत्र समीक्षा
7. जरनल ऑफ कॉनस्टिट्यशनल एण्ड पार्लियामेन्ट्री स्टडीज
8. उत्तराखण्ड मन्थन
9. हिमालय प्रसंग